द्वादशानुप्रेक्षा

*

बारसणुपेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)

मंगलाचरण और प्रतिज्ञावाक्य

णमिऊण सव्वसिद्धे, झाणुत्तमखविददीहसंसारे।
दस दस दो दो व जिणे, दस दो अणुपेहणं वोच्छे।।१।।

जिन्होंने उत्तम ध्यानके द्वारा दीर्घ संसारका नाश कर दिया है ऐसे समस्त सिद्धों तथा चौबीस तीर्थंकरोंको नमस्कार कर बारह अनुप्रेक्षाओंको कहूँगा।।१।।

बारह अनुप्रेक्षाओंके नाम

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जर, धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो।२।।

अध्रुव, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधि इन बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतन करना चाहिए।।२।।

अध्रुव अनुप्रेक्षा

वरभवणजाणवाहणसयणासणदेवमणुवरायाणं।
मादुपिदुसजणभिच्चसंबंधिणो य पिदिवियाणिच्चा।।३।।

उत्तम भवन, यान, वाहन, शयन, आसन, देव, मनुष्य, राजा, माता, पिता, कुटुंबी और सेवक आदि सभी अनित्य तथा पृथक् हो जानेवाले हैं।।३।।

सामग्गिंदियरूवं, आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्णं, सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे।।४।।

सब प्रकारकी सामग्री -- परिग्रह, इंद्रियाँ, रूप, नीरोगिता, यौवन, बल, तेज, सौभाग्य और सौंदर्य ये सब इंद्रधनुष्यके समान -- शाश्वत रहनेवाले नहीं हैं अर्थात् नश्वर है।।४।।

जलबुब्बुदसक्कधणुखणरुचिघणसोहमिव थिरं ण हवे।
अहमिंदट्ठाणाहिं, बलदेवप्पहुदिपज्जाया।।५।।

अहमिंद्रके पद और बलदेव आदिकी पर्यायें जलके बबूले, इंद्रधनुष्य, बिजली और मेघकी शोभाके समान -- स्थिर रहनेवाली नहीं हैं।।५।।

जीवणिबद्धं देहं, खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं।
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि।।६।।

जब दूध और पानीकी तरह जीवके साथ मिला हुआ शरीर शीघ्र नष्ट हो जाता है तब भोगोपभोगका कारणभूत द्रव्य-- स्त्री आदि परिकर नित्य कैसे हो सकता है? ।।६।।

परमट्ठेण दु आदा, देवासुरमणुवरायविभवेहिं।
वदिरित्तो सो अप्पा, सस्सदमिदि चिंतए णिच्चं।।७।।

परमार्थसे आत्मा देव, असुर और नरेंद्रोंके वैभवोंसे भिन्न है और वह आत्मा शाश्वत है ऐसा निरंतर चिंतन करना चाहिए।।७।।

अशरणानुप्रेक्षा

मणिमंतोसहरक्खा, हयगयरहओ य सयलविज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं, तिसु लोए मरणसमयम्हि।।८।।

मरणके समय तीनों लोकोंमें मणि, मंत्र, औषधि, रक्षक सामग्री, हाथी, घोड़े, रथ और समस्त विद्याएँ जीवोंके लिए शरण नहीं हैं अर्थात् मरणसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं।।८।।

सग्गो हवे हि दुग्गं, भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं।
अइरावणो गइंदो, इंदस्स ण विज्जदे सरणं।।९।।

स्वर्ग ही जिसका किला है, देव सेवक हैं, वज्र शस्त्र है और ऐरावत गजराज है उस इंद्रका भी कोई शरण नहीं है -- उसे भी मृत्युसे बचानेवाला कोई नहीं है।।९।।

णवणिहि चउदहरयणं, हयमत्तगइंदचाउरंगबलं।
चक्केसस्स ण सरणं, पेच्छंतो कद्दये काले।।१०।।

नौ निधियाँ, चौदह रत्न, घोड़े, मत्त हाथी और चतुरंगिणी सेना चक्रवर्तीके लिए शरण नहीं हैं। देखते-देखते काल उसे नष्ट कर देता है।।१०।।

जाइजरामरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा।
तम्हा आदा सरणं, बंधोदयसत्तकम्मवदिरित्तो।।११।।

जिस कारण आत्मा ही जन्म, जरा, मरण, रोग और भयसे आत्माकी रक्षा करता है उस कारण बंध उदय और सत्तारूप अवस्थाको प्राप्त कर्मोंसे पृथक् रहनेवाला आत्मा ही शरण है -- आत्माकी निष्कर्म अवस्था ही उसे जन्म जरा आदिसे बचानेवाली है।।११।।

अरुहा सिद्धायरिया, उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।१२।।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं। चूँकि ये परमेष्ठी भी आत्मामें निवास करते हैं अर्थात् आत्मा स्वयं पंच परमेष्ठीरूप परिणमन करता है इसलिए आत्मा ही मेरा शरण है।।१२।।

सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चारित्तं च सत्तवो चेव।
चउरो चिट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।१३।।

चूँकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चारों भी आत्मामें स्थित हैं इसलिए आत्मा ही मेरा शरण है।।१३।।

एक्को करेदि कम्मं, एक्को हिंडदि य दीहसंसारे।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।१४।।

जीव अकेला ही कर्म करता है, अकेला ही दीर्घ संसारमें भ्रमण करता है, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही कर्मका फल भोगता है।।१४।।

एक्को करेदि पावं, विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण।
णिरयतिरिएसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।१५।।

विषयोंके निमित्त तीव्र लोभसे जीव अकेला ही पाप करता है और नरक तथा तिर्यंच गतिमें अकेला ही उसका फल भोगता है।।१५।।

एक्को करेदि पुण्णं, धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।
मणुवदेवेसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।१६।।

धर्मके निमित्त पात्रदानके द्वारा जीव अकेला ही पुण्य करता है और मनुष्य तथा देवोंमें अकेला ही उसका फल भोगता है।।१६।।

पात्रके तीन भेदों तथा अपात्रका वर्णन

उत्तमपत्तं भणियं, सम्मत्तगुणेण संजुदो साहू।
सम्मादिट्ठी सावय, मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ।।१७।।
णिद्दिट्ठो जिणसमये, अविरदसम्मो जहण्णपत्तो त्ति।
सम्मत्तरयणरहिओ, अपत्तमिदि संपरिक्खेज्जो।।१८।।

सम्यक्त्वरूप गुणसे युक्त साधुको उत्तम पात्र कहा गया है, सम्यग्दृष्टि श्रावकको मध्यम पात्र जानना चाहिए, जिनागममें अविरत सम्यग्दृष्टिको जघन्य पात्र कहा गया है और जो सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे रहित है वह अपात्र है। इस प्रकार पात्र और अपात्रकी परीक्षा करनी चाहिए।।१७-१८।।

दंसणभट्टा भट्टा, दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा, दंसणभट्टा ण सिज्झंति।।१९।।

जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे ही भ्रष्ट हैं। सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट मनुष्यका मोक्ष नहीं होता। जो चारित्रसे भ्रष्ट हैं वे तो (पुनः चारित्रके धारण करनेपर) सिद्ध हो जाते हैं, परंतु जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते।

भावार्थ -- जो मनुष्य सम्यग्दृष्टि तो है परंतु चारित्रमोहका तीव्र उदय आ जानेके कारण चारित्रसे भ्रष्ट हो गया है वह पुनः चारित्रको धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है परंतु जो सम्यग्दर्शनसे भी भ्रष्ट हो गया है उसका मोक्ष प्राप्त करना सरल नहीं है।।१९।।

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो, णाणदंसणलक्खणो।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतेइ संजदो।।२०।।

मैं अकेला हूँ, ममत्वसे रहित हूँ, शुद्ध हूँ तथा ज्ञान-दर्शनरूप लक्षणसे युक्त हूँ इसलिए शुद्ध एकत्वभाव ही उपादेय है -- ग्रहण करनेके योग्य है। इस प्रकार संयमी साधुको सदा विचार करते रहना चाहिए।।२०।।

अन्यत्वानुप्रेक्षा

मादापिदरसहोदरपुत्तकलत्तादिबंधुसंदोहो।
जीवस्स ण संबंधो, णियकज्जवसेण वट्टंति।।२१।।

माता, पिता, सगा भाई, पुत्र तथा स्त्री आदि बंधुजनों -- इष्ट जनोंका समूह जीवसे संबंध रखनेवाला नहीं है। ये सब अपने कार्यके वश साथ रहते हैं।।२१।।

अण्णो अण्णं सोयदि, मदो वि मम णाहगो त्ति मण्णंतो।
अप्पाणं ण हु सोयदि, संसारमहण्णवे बुड्डं।।२२।।

यह मेरा स्वामी था, यह मर गया इस प्रकार मानता हुआ अन्य जीव अन्य जीवके प्रति शोक करता है परंतु संसाररूपी महासागरमें डूबते हुए अपने आपके प्रति शोक नहीं करता।।२२।।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादा, एवं चिंतेहि अण्णत्तं।।२३।।

यह जो शरीरादिक बाह्य द्रव्य है वह सब मुझसे अन्य है, ज्ञान दर्शन ही आत्मा है अर्थात् ज्ञान दर्शन ही मेरे हैं। इस प्रकार अन्यत्व भावनाका चिंतन करो।।२३।।

संसारानुप्रेक्षा

पंचविहे संसारे, जाइजरामरणरोगभयपउरे।
जिणमग्गमपेच्छंतो, जीवो परिभमदि चिरकालं।।२४।।

जिन भगवानके द्वारा प्रणीत मार्गकी प्रतीतिको नहीं करता हुआ जीव, चिरकालसे जन्म, जरा, मरण, रोग और भयसे परिपूर्ण पाँच प्रकारके संसारमें परिभ्रमण करता रहता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये पाँच परिवर्तन ही पांच प्रकारका संसार कहलाते हैं।।२४।।

द्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप

सव्वे वि पोग्गला खलु, एगे भुत्तुज्झिया हि जीवेण।
असयं अणंतखुत्तो, पुग्गलपरियट्टसंसारे।।२५।।

पुद्‌गलपरिवर्तन (द्रव्यपरिवर्तन)रूप संसारमें इस जीवने अकेले ही समस्त पुद्‌गलोंको अनंत बार भोगकर छोड़ दिया है।।२५।।

क्षेत्रपरिवर्तनका स्वरूप

सव्वम्हि लोयखेत्ते, कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं।
उग्गाहणेण बहुसो, परिभमिदो खेत्तसंसारे।।२६।।

समस्त लोकरूपी क्षेत्रमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ यह क्रमसे उत्पन्न न हुआ हो। समस्त अवगाहनाओंके द्वारा इस जीवने क्षेत्र संसारमें अनेक बार भ्रमण किया है।

भावार्थ -- क्षेत्रपरिवर्तनके स्वक्षेत्र परिवर्तन और परक्षेत्र परिवर्तनकी अपेक्षा दो भेद हैं। समस्त लोकाकाशमें क्रमसे उत्पन्न हो लेनेसे जितना समय लगता है वह स्वक्षेत्रपरिवर्तन है और क्रमसे जघन्य अवगाहनासे लेकर उत्कृष्ट अवगाहना तक धारण करनेमें जितना समय लगता है उतना परक्षेत्रपरिवर्तन है। इस गाथामें दोनों प्रकारके क्षेत्रपरिवर्तनोंकी चर्चा हो रही है।।२६।।

कालपरिवर्तनका स्वरूप

अवसप्पिणिउवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो, परिभमिदो कालसंसारे।।२७।।

यह जीव अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालकी समस्त समयावलियोंमें उत्पन्न हुआ है तथा मरा है। इस तरह इसने काल संसारमें अनेक बार परिभ्रमण किया है।।२७।।

भवपरिवर्तनका स्वरूप

णिरयाउजहण्णादिसु, जाव दु उवरिल्लया दु गेवेज्जा।
मिच्छत्तसंसिदेण दु, बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो।।२८।।

मिथ्यात्वके आश्रयसे इस जीवने नरककी जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तककी भवस्थितिको धारण कर अनेक बार भ्रमण किया है।

भावार्थ -- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट आयु तकको क्रमसे प्राप्त कर लेनेमें जितना समय लगता है उतने समयको भवपरिवर्तन कहते हैं। नरक गतिकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्षकी तथा उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरकी है। मनुष्य और तिर्यंच गतिकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी है। तथा देवगतिकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरकी है। परंतु मिथ्यादृष्टि जीवकी उत्पत्ति देवगतिमें इकतीस सागर की आयुसे युक्त उपरिम ग्रैवेयक तक ही होती है। इसलिए देवगतिमें भवस्थितिकी अंतिम मर्यादा ग्रैवेयक तक ही बतलायी गयी है।।२८।।

भावपरिवर्तनका स्वरूप

सव्वे पयडिट्ठिदिओ, अणुभागपदेसबंधठाणाणि।
जीवो मिच्छत्तवसा, भमिदो पुण भावसंसारे।।२९।।

इस जीवने मिथ्यात्वके वश समस्त कर्मप्रकृतियोंकी सब स्थितियों, सब अनुभागबंधस्थानों और सब प्रदेशबंध स्थानोंको प्राप्त कर बार-बार भाव संसारमें परिभ्रमण किया है।

भावार्थ -- ज्ञानावरणादि समस्त कर्मप्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबंधसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबंध तकके योग्य समस्त कषायाध्यवसायस्थान, समस्त अनुभागाध्यवसायस्थान और समस्त योगस्थानोंको प्राप्त कर लेना भावसंसार है। ये पाँचों परिवर्तन ही पाँच प्रकारके संसार हैं। इन संसारोंमें जीवका परिभ्रमण मिथ्यात्वके कारण होता है।।२९।।

पुत्तकलत्तणिमित्तं, अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं, सो जीवो भमदि संसारे।।३०।।

जो जीव पुत्र तथा स्त्रीके निमित्त पापबुद्धिसे धन कमाता है और दयादानका परित्याग करता है वह संसारमें भ्रमण करता है।।३०।।

मम पुत्तं मम भज्जा, मम धणधण्णो त्ति तिव्वकंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धिं, पच्छा परिपडदि दीहसंसारे।।३१।।

जो जीव, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धनधान्य है इस प्रकारकी तीव्र आकांक्षासे धर्मबुद्धिको छोड़ता है वह पीछे दीर्घ संसारमें पड़ता है।।३१।।

मिच्छोदयेण जीवो, णिंदंतो जोण्हभासियं धम्मं।
कुधम्मकुलिंगकुतित्थं, मण्णंतो भमदि संसारे।।३२।।

मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव जिनेंद्र भगवान्के द्वारा कथित धर्मकी निंदा करता हुआ तथा कुलिंग और कुतीर्थको मानता हुआ संसारमें भ्रमण करता है।।३२।।

हंतूण जीवरासिं, महुमंसं सेविऊण सुरयाणं।
परदव्वपरकलत्तं, गहिऊण य भमदि संसारे ।।३३।।

जीवराशिका घात कर, मधु मांस और मदिराका सेवन कर तथा परद्रव्य और परस्त्रीको ग्रहण कर यह जीव संसारमें भ्रमण करता है।।३३।।

जत्तेण कुणइ पावं, विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो।
मोहंधयारसहियो, तेण दु परिपडदि संसारे।।३४।।

मोहरूपी अंधकारसे सहित जीव विषयोंके निमित्त यत्नपूर्वक पाप करता है और उससे संसारमें पड़ता है।।३४।।

णिच्चिदरधादुसत्तय, तरुदसवियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चौद्दस मणुए सदसहस्सा।।३५।।

नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक इन छह प्रकारके जीवोंमें प्रत्येककी सात सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिकायिककी दस लाख, विकलेंद्रियोंकी छह लाख, देव, नारकी तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचोंमें प्रत्येककी चार-चार लाख और मनुष्योंकी चौदह लाख इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ हैं। इनमें संसारी जीव भ्रमण करता है।।३५।।

संजोगविप्पजोगं, लाहालाहं सुहं च दुक्खं च।
संसारे भूदाणं, होदि हु माणं तहावमाणं च।।३६।।

संसारमें जीवोंको संयोग वियोग, लाभ अलाभ, सुख दुःख तथा मान अपमान प्राप्त होते हैं।।३६।।

कम्मणिमित्तं जीवो, हिंडदि संसारघोरकांतारे।
जीवस्स ण संसारो, णिच्चयणयकम्मविम्मुक्को।।३७।।

कर्मोंके निमित्तसे यह जीव संसाररूपी भयानक वनमें भ्रमण करता है, किंतु निश्चय नयसे जीव कर्मोंसे रहित है इसलिए उसका संसार भी नहीं है।

भावार्थ -- जीवके संसारी और मुक्त भेद व्यवहार नयसे बनते हैं, निश्चय नयसे नहीं बनते, क्योंकि निश्चय नयसे जीव और कर्म दोनों भिन्न भिन्न द्रव्य हैं।।३७।।

संसारमदिक्कंतो, जीवोवादेयमिति विचिंतेज्जो।
संसारदुहक्कंतो, जीवो सो हेयमिति विचिंतेज्जो।।३८।।

संसारसे छूटा हुआ जीव उपादेय है ऐसा विचार करना चाहिए और संसारके दुःखोंसे आक्रांत जीव छोड़नेयोग्य हैं ऐसा चिंतन करना चाहिए।।३८।।

लोकानुप्रेक्षा

जीवादिपयट्ठाणं, समवाओ सो णिरुच्चए लोगो।
तिविहो हवेइ लोगो, अहमज्झिमउड्ढभेएण।।३९।।

जीव आदि पदार्थोंका जो समूह है वह लोक कहा जाता है। अधोलोक, मध्यमलोक और ऊर्ध्वलोक के भेदसे लोक तीन प्रकारका होता है।।३९।।

णिरया हवंति हेट्ठा, मज्झे दीवंबुरासयो संखा।
सग्गो तिसट्ठिभेओ, एत्तो उड्ढो हवे मोक्खो।।४०।।

नीचे नरक है, मध्यमें असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं ऊपर त्रेसठ भेदोंसे युक्त स्वर्ग हैं और इनके ऊपर मोक्ष है।।४०।।

स्वर्गके त्रेसठ भेदोंका वर्णन

इगतीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे।
तित्तिय एक्केंकेंदियणामा उडुआदि तेसट्ठी।।४१।।

सौधर्म और ऐशान कल्पमें इकतीस, सनत्कुमार और माहेंद्र कल्पमें सात, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें चार, लांतव और कापिष्ठ कल्पमें दो, शुक्र और महाशुक्र कल्पमें एक, शतार और सहस्रार कल्पमें एक तथा आनत प्राणत और अच्युत इन चार अंतके कल्पोंमें छह इस तरह सोलह कल्पोंमें कुल ५२ पटल हैं। इनके आगे अधोग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकोंके त्रिकमें प्रत्येकके तीन अर्थात् नौ ग्रैवेयकोंके नौ, अनुदिशोंका एक और अनुत्तर विमानोंका एक पटल है। इस तरह सब मिलाकर ऋतु आदि त्रेसठ पटल हैं।।४१।।

असुहेण णिरयतिरियं, सुहउवजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं, एवं लोयं विचिंतिज्जो।।४२।।

अशुभोपयोगसे नरक और तिर्यंच गति प्राप्त होती है, शुभोपयोगसे देव और मनुष्यगतिका सुख मिलता है और शुद्धोपयोगसे जीव मुक्तिको प्राप्त होता है -- इस प्रकार लोकका विचार करना चाहिए।।४२।।

अशुचित्वानुप्रेक्षा

अट्ठीहिं पडिबद्धं, मंसविलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमिसंकुलेहिं भरियमचोक्खं देहं सयाकालं।।४३।।

यह शरीर हड्डियोंसे बना है, मांससे लिपटा है, चर्मसे आच्छादित है, कीटसंकुलोंसे भरा है और

सदा मलिन रहता है।।४३।।

दुग्गंध बीभच्छं, कलिमलभरिदं अचेयणं मुत्तं।
सडणप्पडणसहावं, देहं इदि चिंतए णिच्चं।।४४।।

यह शरीर दुर्गंधसे युक्त है, घृणित है, गंदे मलसे भरा हुआ है, अचेतन है, मूर्तिक है तथा सड़ना और गलना स्वभावसे सहित है ऐसा सदा चिंतन करना चाहिए।।४४।।

रसरुहिरमंसमेदट्ठीमज्जसंकुलं पुत्तपूयकिमिबहुलं।
दुग्गंधमसुचि चम्ममयमणिच्चमचेयणं पडणं।। ४५।।

यह शरीर रस, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी तथा मज्जासे युक्त है। मूत्र, पीब और कीड़ोंसे भरा है, दुर्गंधित है, अपवित्र है, चर्ममय है, अनित्य है, अचेतन है और पतनशील है -- नश्वर है।।४५।।

देहादो वदिरित्तो, कम्मविरहिओ अणंतसुहणिलयो।
चोक्खो हवेइ अप्पा, इदि णिच्चं भावणं कुज्जा।।४६।।

आत्मा इस शरीरसे भिन्न है, कर्मरहित है, अनंत सुखोंका भंडार है तथा श्रेष्ठ है इस प्रकार निरंतर भावना करनी चाहिए।।४६।।

आस्रवानुप्रेक्षा

मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य आसवा होंति।
पण पण चउ तिय भेदा, सम्मं परिकित्तिदा समए।।४७।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये आस्रव हैं। उक्त मिथ्यात्व आदि आस्रव क्रमसे पाँच, पाँच, चार और तीन भेदोंसे युक्त हैं। आगममें इनका अच्छी तरह वर्णन किया गया है।।४७।।

मिथ्यात्व तथा अविरतिके पाँच भेद

एयंतविणयविवरियसंसयमण्णाणमिदि हवे पंच।
अविरमणं हिंसादी, पंचविहो सो हवइ णियमेण।।४८।।

एकांत, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान यह पाँच प्रकारका मिथ्यात्व है तथा हिंसा आदिके भेदसे पाँच प्रकारकी अविरति नियमसे होती है।।४८।।

चार कषाय और तीन योग

कोहो माणो माया, लोहो वि य चउव्विहं कसायं खु।
मण वचिकाएण पुणो, जोगो तिवियप्पमिदि जाणे।।४९।।

क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार प्रकारकी कषाय है। तथा मन, वचन और कायके भेदसे

योगके तीन भेद हैं यह जानना चाहिए।।४९।।

असुहेदरभेदेण दु, एक्केक्कं वण्णिदं हवे दुविहं।
आहारादी सण्णा, असुहमणं इदि विजाणेहि।।५०।।

मन वचन काय इन तीनों योगोंमेंसे प्रत्येक योग अशुभ और शुभके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। आहार आदि संज्ञाओंका होना अशुभ मन है ऐसा जानो।।५०।।

किण्हादि तिण्णि लेस्सा, करणजसोक्खेसु सिद्धपरिणामो।
ईसा विसादभावो, असुहमणं त्ति य जिणा वेंति।।५१।।

कृष्णादि तीन लेश्याएँ, इंद्रियजन्य सुखोंमें तीव्र लालसा, ईर्ष्या तथा विषादभाव अशुभ मन है ऐसा जिनेंद्रदेव जानते हैं।।५१।।

रागो दोसो मोहो, हास्सादिणोकसायपरिणामो।
थूलो वा सुहुमो वा, असुहमणो त्ति य जिणा वेंति।।५२।।

राग, द्वेष, मोह तथा हास्यादिक नोकषायरूप परिणाम चाहे स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, अशुभ मन है ऐसा जिनेंद्रदेव जानते हैं।।५२।।

भत्थित्थिरायचोरकहाओ वयणं वियाण असुहमिदि।
बंधणछेदणमारणकिरिया सा असुहकायेत्ति।।५३।।

भक्तकथा, स्त्रीकथा, राजकथा और चोरकथा अशुभ वचन है ऐसा जानो। तथा बंधन, छेदन और मारणरूप जो क्रिया है वह अशुभ काय है।।५३।।

मोत्तूण असुहभावं, पुव्वुत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वदसमिदिसीलसंजमपरिणामं सुहमणं जाणे।।५४।।

पहले कहे हुए अशुभ भाव तथा अशुभ द्रव्यको व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणामोंका होना शुभ मन है ऐसा जानो।।५४।।

संसारछेदकारणवयणं सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं।
जिणदेवादिसु पूजा, सुहकायं त्ति य हवे चेट्ठा।।५५।।

जो वचन संसारका छेद करनेमें कारण है वह शुभ वचन है ऐसा जिनेंद्र भगवान्ने कहा है। तथा जिनेंद्रदेव आदिकी पूजारूप जो चेष्टा -- शरीरकी प्रवृत्ति है वह शुभकाय है।।५५।।

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुःखजलचराकिण्णे।
जीवस्स परिब्भमणं, कम्मासवकारणं होदि।।५६।।

अनेक दोषरूपी तरंगोंसे युक्त तथा दुःखरूपी जलचर जीवोंसे व्याप्त संसाररूपी समुद्रमें जीवका जो परिभ्रमण होता है वह कर्मास्रवके कारण होता है। अर्थात् कर्मास्रवके कारण ही जीव संसारसमुद्रमें परिभ्रमण करता है।।५६।।

कम्मासवेण जीवो, बूडदि संसारसागरे घोरे।
जं णाणवसं किरिया, मोक्खणिमित्तं परंपरया।।५७।।

कर्मास्रवके कारण जीव संसाररूपी भयंकर समुद्रमें डूब रहा है। जो क्रिया ज्ञानवश होती है वह परंपरासे मोक्षका कारण होती है।।५७।।

आसवहेदू जीवो, जम्मसमुद्दे णिमज्जदे खिप्पं।
आसवकिरिया तम्हा, मोक्खणिमित्तं ण चिंतेज्जो।।५८।।

आस्रवके कारण जीव संसाररूपी समुद्रमें शीघ्र डूब जाता है इसलिए आस्रवरूप क्रिया मोक्षका निमित्त नहीं है ऐसा विचार करना चाहिए।

भावार्थ -- अशुभास्रवरूप क्रिया तो मोक्षका कारण है ही नहीं, परंतु शुभास्रवरूप क्रिया भी मोक्षका कारण नहीं है ऐसा चिंतन करना चाहिए।।५८।।

पारंपज्जाएण दु, आसवकिरियाए णत्थि णिव्वाणं।
संसारगमणकारणमिदि णिंदं आसवो जाण।।५९।।

परंपरासे भी आस्रवरूप क्रियाके द्वारा निर्वाण नहीं होता। आस्रव संसारगमनका ही कारण है। इसलिए निंदनीय है ऐसा जानो।।५९।।

पुव्वुत्तासवभेदा, णिच्छयणयएण णत्थि जीवस्स।
उहयासवणिम्मुक्कं, अप्पाणं चिंतए णिच्चं।।६०।।

पहले जो आस्रवके भेद कहे गये हैं वे निश्चयनयसे जीवके नहीं हैं, इसलिए आत्माको दोनों प्रकारके आस्रवोंसे रहित ही निरंतर विचारना चाहिए।।६०।।

संवरानुप्रेक्षा

चलमलिनमगाढं च, वज्जिय सम्मत्तदिढकवाडेण।
मिच्छत्तासवदारणिरोहो होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं।।६१।।

चल, मलिन और अगाढ़ दोषको छोड़कर सम्यक्त्वरूपी दृढ़ कपाटोंके द्वारा मिथ्यात्वरूपी आस्रंवद्वारका निरोध हो जाता है ऐसा जिनेद्रदेवने कहा है।।

भावार्थ -- चल, मलिन और अगाढ़ ये सम्यग्दर्शनके दोष हैं। इनका अभाव हो जानेपर सम्यग्दर्शनमें दृढ़ता आती है। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार आस्रव हैं। यहाँ मिथ्यात्वके निमित्तसे

होनेवाले आस्रवको द्वारकी तथा सम्यग्दर्शनको सुदृढ़ कपाटकी उपमा दी गयी है और उस उपमाके द्वारा कहा गया है कि सम्यग्दर्शनरूपी सुदढ़ कपाटोंसे मिथ्यात्वके निमित्तसे होनेवाले आस्रवरूप द्वारका निरोध हो जाता है। आस्रवका रुक जाना ही संवर कहलाता है।।६१।।

पंचमहव्वयमणसा, अविरमणणिरोहणं हवे णियमा।
कोहादि आसवाणं, दाराणि कसायरहियपल्लगेहि।।६२।।

पंचमहाव्रतोंसे युक्त मनसे अविरतिरूप आस्रवका निरोध नियमसे हो जाता है और क्रोधादि कषायरूप आस्रवोंके द्वार कषायके अभावरूप फाटकोंसे रुक जाते हैं -- बंद हो जाते हैं।।६२।।

सुहजोगस्स पवित्ती, संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो, सद्धुवजोगेण संभवदि।।६३।।

शुभयोगकी प्रवृत्ति अशुभ योगका संवर करती है और शुद्धोपयोगके द्वारा शुभयोगका निरोध हो जाता है।।६३।।

सुद्धुवजोगेण पुणो, धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स।
तम्हा संवरहेदू, झाणो त्ति विचिंतए णिच्चं।।६४।।

शुद्धोपयोगसे जीवके धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान होते हैं, इसलिए ध्यान संवरका कारण है ऐसा निरंतर विचार करना चाहिए।।६४।।

जीवस्स ण संवरणं, परमट्ठणएण सुद्धभावादो।
संवरभावविमुक्कं, अप्पाणं चिंतए णिच्चं।।६५।।

परमार्थ नय -- निश्चय नयसे जीवके संवर नहीं है क्योंकि वह शुद्ध भावसे सहित है। अतएव आत्माको सदा संवरभावसे रहित विचारना चाहिए।।६५।।

बंधपदेसग्गलणं, णिज्जरणं इदि जिणेहि पण्णत्तं।
जेण हवे संवरणं, तेण दु णिज्जरणमिदि जाण।।६६।।

बँधे हुए कर्मोंका गलना निर्जरा है ऐसा जिनेंद्र भगवान्ने कहा है। जिस कारणसे संवर होता है उसी कारणसे निर्जरा होती है।।६६।।

सा पुण दुविहा णेया, सकालपक्का तवेण कयमाणा।
चदुगदियाणं पढमा, वयजुत्ताणं हवे बिदिया।।६७।।

फिर वह निर्जरा दो प्रकारकी जाननी चाहिए -- एक अपना उदयकाल आनेपर कर्मोंका स्वयं पककर झड़ जाना और दूसरी तपके द्वारा की जानेवाली। इनमें पहली निर्जरा तो चारों गतियोंके जीवोंकी

होती है और दूसरी निर्जरा व्रती जीवोंके होती है।।६७।।

धर्मानुप्रेक्षा

एयारसदसभेयं, धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणियं।
सागारणगाराणं, उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं।।६८।।

उत्तम सुखसे संपन्न जिनेंद्र भगवान्ने कहा है कि गृहस्थों तथा मुनियोंका वह धर्म क्रमसे ग्यारह और दश भेदोंसे युक्त है तथा सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है।

भावार्थ -- आत्माकी निर्मल परिणतिको धर्म कहते हैं। वह धर्म गृहस्थ और मुनिके भेदसे दो प्रकारका होता है। गृहस्थधर्मके दर्शन प्रतिमा आदि ग्यारह भेद हैं और मुनिधर्मके उत्तम क्षमा आदि दस भेद हैं। इन दोनों प्रकारके धर्मोंके पहले सम्यग्दर्शनका होना आवश्यक है, उसके बिना धर्मका प्रारंभ नहीं होता।।६८।।

गृहस्थके ग्यारह धर्म

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तरायभत्ते य।
बम्हारंभपरिग्रह, अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे।।६९।।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशविरत अर्थात् गृहस्थके भेद हैं।।६९।।

उत्तमखममद्दवज्जवसच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं, बम्हा इदि दसविहं होदि।।७०।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये मुनिधर्मके दश भेद हैं।।७०।।

उत्तम क्षमाका लक्षण

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदि धम्मो त्ति।।७१।।

यदि क्रोधकी उत्पत्तिका साक्षात् बहिरंग कारण हो फिर भी जो कुछ भी क्रोध नहीं करता उसके क्षमा धर्म होता है।।७१।।

मार्दव धर्मका लक्षण

कुलरूवजादिबुद्धिसु, तपसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो, मद्दवधम्मं हवे तस्स।।७२।।

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शीलके विषयमें कुछ भी गर्व नहीं करता उसके

मार्दव धर्म होता है।।७२।।

आर्जव धर्मका लक्षण

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइओ, तस्स दु संभवदि णियमेण।।७३।।

जो मुनि कुटिलभावको छोड़कर निर्मल हृदयसे आचरण करता है उसके नियमसे तीसरा आर्जव धर्म होता है।।७३।।

सत्यधर्मका लक्षण

परसंतावणकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो, तस्स दु धम्मं हवे सच्चं।।७४।।

दूसरोंको संताप करनेवाले वचनको छोड़कर जो भिक्षु स्वपरहितकारी वचन बोलता है उसके चौथा सत्यधर्म होता है।।७४।।

शौच धर्मका लक्षण

कंखाभावणिवित्तिं, किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्ढदि परममुणी, तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं।।७५।।

जो उत्कृष्ट मुनि कांक्षा भावसे निवृत्ति कर वैराग्यभावसे रहता है उससे शौचधर्म होता है।।७५।।

संयमधर्मका लक्षण

वदसमिदिपालणाए, दंडच्चाएण इंदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो, संजमधम्मो हवे णियमा।।७६।।

मन वचन कायकी प्रवृत्तिरूप दंडको त्यागकर तथा इंद्रियोंको जीतकर जो व्रत और समितियोंसे पालनरूप प्रवृत्ति करता है उसके नियमसे संयमधर्म होता है।।७६।।

उत्तम तपका लक्षण

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण।।७७।।

विषय और कषायके विनिग्रहरूप भावको करके जो ध्यान और स्वाध्यायके द्वारा आत्माकी भावना करता है उसके नियमसे तप होता है।।७७।।

णिव्वेगतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं।।७८।।

जो समस्त द्रव्योंके विषयमें मोहका त्याग कर तीन प्रकारके निर्वेदकी भावना करता है उसके त्याग धर्म होता है, ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है।।७८।।

आकिंचन्य धर्मका लक्षण

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुदुहदं।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्स किंचणहं।।७९।।

जो मुनि निःसंग -- निष्परिग्रह होकर सुख और दुःख देनेवाले अपने भावोंका निग्रह करता हुआ निर्द्वंद्व रहता है अर्थात् किसी इष्ट-अनिष्टके विकल्पमें नहीं पड़ता उसके आकिंचन्य धर्म होता है।।७९।।

ब्रह्मचर्य धर्मका लक्षण

सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं, सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं।।८०।।

जो स्त्रियोंके सब अंगोंको देखता हुआ उनमें खोटे भावको छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकारके विकार भावको प्राप्त नहीं होता वह निश्चयसे अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्य धर्मको धारण करनेके लिए समर्थ होता है।।८०।।

सावयधम्मं चत्ता, जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो।
सो णय वज्जदि मोक्खं, धम्मं इदि चिंतए णिच्चं।।८१।।

जो जीव श्रावक धर्मको छोड़कर मुनिधर्म धारण करता है वह मोक्षको नहीं छोड़ता है अर्थात् उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है इस प्रकार निरंतर धर्मका चिंतन करना चाहिए।

भावार्थ -- गृहस्थ धर्म परंपरासे मोक्षका कारण है और मुनिधर्म साक्षात् मोक्षका कारण है इसलिए यहाँ गृहस्थके धर्मको गौण कर मुनिधर्मकी प्रभुता बतलानेके लिए कहा गया है कि जो गृहस्थधर्मको छोड़कर मुनिधर्ममें प्रवृत्त होता है वह मोक्षको नहीं छोड़ता अर्थात् उसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होता है।।८१।।

णिच्छयणएण जीवो, सागारणगारधम्मदो भिण्णो।
मज्झत्थभावणाए, सुद्धप्पं चिंतए णिच्चं।।८२।।

निश्चयनयसे जीव गृहस्थधर्म और मुनिधर्मसे भिन्न है इसलिए दोनों धर्मोंमें मध्यस्थ भावना रखते हुए निरंतर शुद्ध आत्माका चिंतन करना चाहिए।

भावार्थ -- मोह और लोभसे रहित आत्माकी निर्मल परिणतिको धर्म कहते हैं। गृहस्थ धर्म तथा मुनिधर्म उस निर्मल परिणतिके प्रकट होनेमें सहायक होनेसे धर्म कहे जाते हैं, परमार्थसे धर्म नहीं है इसलिए दोनोंमें माध्यस्थ भाव रखते हुए शुद्ध आत्माके चिंतनकी ओर आचार्यने यहाँ प्रेरणा दी है।।८२।।

बोधिदुर्लभ भावना

उप्पज्जदि सण्णाणं, जेण उवाएण तस्सुवायस्स।
चिंता हवेइ बोहो, अच्चंतं दुल्लहं होदि।।८३।।

जिस उपायसे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपायकी चिंता बोधि है, यह बोधि अत्यंत दुर्लभ है।

भावार्थ -- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको बोधि कहते हैं, इसकी दुर्लभताका विचार करना सो बोधिदुर्लभभावना है।।८३।।

कम्मुदयजपज्जायां, हेयं खाओवसमियणाणं तु।
सगदव्वमुवादेयं, णिच्छयत्ति होदि सण्णाणं।।८४।।

कर्मोदयसे होनेवाली पर्याय होनेके कारण क्षायोपशमिक ज्ञान हेय है और आत्मद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय होना सम्यग्ज्ञान है।।८४।।

मूलुत्तरपयदीओ, मिच्छत्तादी असंखलोगपरिमाणा।
परदव्वं सगदव्वं, अप्पा इदि णिच्छयणएण।।८५।।

मिथ्यात्वको आदि लेकर असंख्यात लोकप्रमाण जो कर्मोंकी मूल तथा उत्तर प्रकृतियाँ हैं वे परद्रव्य हैं और आत्मा स्वद्रव्य है ऐसा निश्चयनयसे कहा जाता है।

भावार्थ -- ज्ञायक स्वभावसे युक्त आत्मा स्वद्रव्य है और उसके साथ लगे हुए जो नोकर्म द्रव्यकर्म तथा भावकर्म हैं वे सब परद्रव्य हैं ऐसा निश्चयनयसे जानना चाहिए।।८५।।

एवं जायदि णाणं, हेयमुवादेय णिच्चये णत्थि।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं, संसारविरमणट्ठे य।।८६।।

इस प्रकार स्वद्रव्य और परद्रव्यका चिंतन करनेसे हेय और उपादेयका ज्ञान हो जाता है अर्थात् परद्रव्य हेय है और स्वद्रव्य उपादेय है। निश्चयनयमें हेय और उपादेयका विकल्प नहीं है। मुनिको संसारका विराम करनेके लिए बोधिका विचार करना चाहिए।।८६।।

बारस अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं।
आलोयणं समाहिं, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं।।८७।।

ये बारह अनुप्रेक्षाएँ ही प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना, और समाधि हैं इसलिए इन अनुप्रेक्षाओंकी निरंतर भावना करनी चाहिए।८७।।

रत्तिदिवं पडिकमणं, पच्चक्खाणं समाहि सामइयं।
आलोयणं पकुव्वदि, जदि विज्जदि अप्पणो सत्तिं।।८८।।

यदि अपनी शक्ति है तो रातदिन प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि और आलोचना करनी चाहिए।।८८।।

मोक्खगया जे पुरिसा, अणाइकालेण बारअणुवेक्खं।
परिभाविऊण सम्मं, पणमामि पुणो पुणो तेसिं।।८९।।

जो पुरुष अनादिकालसे बारह अनुप्रेक्षाओंको अच्छी तरह चिंतन कर मोक्ष गये हैं मैं उन्हें बार बार प्रणाम करता हूँ।।८९।।

किं पलविएण बहुणा, जे सिद्धा णरवरा गये काले।
सिज्झिहदि जेवि भविया, तं जाणह तस्स माहप्पं।।९०।।

बहुत कहनेसे क्या लाभ है? भूतकालमें जो श्रेष्ठ पुरुष सिद्ध हुए हैं और जो भविष्यत् कालमें सिद्ध होवेंगे उसे अनुप्रेक्षाका महत्त्व जानो।।९०।।

इदि णिच्छयववहारं, जं भणियं कुंदकुंदमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो, सो पावइ परमणिव्वाणं।।९१।।

इस प्रकार कुंदकुंद मुनिराजने निश्चय और व्यवहारका आलंबन लेकर जो कहा है, शुद्ध हृदय होकर जो उसकी भावना करता है वह परम निर्वाणको प्राप्त होता है।।९१।।

इस प्रकार कुंदकुंदाचार्यविरचित बारसणुपेक्खा -- बारह अनुप्रेक्षा ग्रंथमें
बारह अनुप्रेक्षाओंका वर्णन समाप्त हुआ।

***